Indian Journal of Multidisciplinary Research and Studies
ISSN: 3108-1681 | Volume- 2, Issue- 4 | October - December 2026

धर्म में ईश्वर, नैतिकता और आस्था : एक दार्शनिक एवं सामाजिक शोधपरक अध्ययन

Dr. Rishika Verma
Assistant Professor, Department of Philosophy, Birla Campus,
Hemavati Nandan Bahuguna Garhwal University, Srinagar, Garhwal Uttarakhand, India

सारांश

मानव सभ्यता के विकास के साथ धर्म ने व्यक्ति और समाज के जीवन को गहराई से प्रभावित किया है। धर्म केवल पूजा-पद्धतियों, कर्मकाण्डों अथवा किसी विशेष धार्मिक समुदाय की मान्यताओं तक सीमित नहीं है, बल्कि यह जीवन के अर्थ, कर्तव्य, मूल्य, आचरण, आत्मिक विकास और परम सत्य से जुड़े प्रश्नों का भी उत्तर खोजने का प्रयास करता है। धर्म के व्यापक स्वरूप में ईश्वर, नैतिकता और आस्था तीन अत्यंत महत्त्वपूर्ण आधार हैं। ईश्वर की अवधारणा मानव को सृष्टि, जीवन और अस्तित्व के परम आधार पर विचार करने के लिए प्रेरित करती है; नैतिकता उसके व्यवहार को उचित-अनुचित, शुभ-अशुभ तथा न्याय-अन्याय की कसौटी प्रदान करती है; जबकि आस्था व्यक्ति को जीवन की अनिश्चितताओं, संघर्षों और अस्तित्वगत प्रश्नों के बीच आंतरिक शक्ति एवं विश्वास प्रदान करती है। इन तीनों का परस्पर संबंध धर्म के स्वरूप को समझने के लिए अत्यंत आवश्यक है। यह शोधपरक अध्ययन धर्म में ईश्वर, नैतिकता और आस्था की अवधारणाओं का दार्शनिक, सामाजिक तथा मानवीय दृष्टिकोण से विश्लेषण प्रस्तुत करता है। भारतीय चिंतन परंपरा में धर्म का संबंध केवल ईश्वर-विश्वास से नहीं, बल्कि सत्य, अहिंसा, करुणा, न्याय, कर्तव्य और लोकमंगल से भी रहा है। इसी प्रकार विश्व की विभिन्न धार्मिक एवं दार्शनिक परंपराओं में ईश्वर की प्रकृति, नैतिकता के स्रोत और आस्था के स्वरूप को लेकर अनेक मत पाए जाते हैं। कुछ परंपराएँ ईश्वर को नैतिक व्यवस्था का आधार मानती हैं, जबकि कुछ दार्शनिक विचारधाराएँ यह स्वीकार करती हैं कि नैतिकता का स्वतंत्र आधार मानव विवेक, कर्तव्यबोध और सामाजिक उत्तरदायित्व में भी हो सकता है। इस दृष्टि से धर्म, ईश्वर, नैतिकता और आस्था का संबंध सरल या एकरेखीय नहीं, बल्कि बहुआयामी है।

मुख्य शब्दः धर्म, ईश्वर, नैतिकता, आस्था, नैतिक मूल्य, विश्वास, कर्तव्य, आध्यात्मिकता, मानवता।

प्रस्तावना

मनुष्य केवल जैविक अस्तित्व वाला प्राणी नहीं है। वह अपने जीवन के उद्देश्य, मृत्यु के रहस्य, सुख-दुःख, न्याय-अन्याय और अस्तित्व के अंतिम आधार के संबंध में निरंतर प्रश्न करता रहा है। इन्हीं प्रश्नों से धर्म, दर्शन और आध्यात्मिक चिंतन की अनेक धाराएँ विकसित हुईं। धर्म ने मनुष्य को केवल किसी अदृश्य सत्ता में विश्वास करना नहीं सिखाया, बल्कि उसके जीवन को एक मूल्यपरक दिशा देने का प्रयास भी किया। धार्मिक परंपराओं में व्यक्ति को सत्य बोलने, हिंसा से बचने, दूसरों की सहायता करने, न्यायपूर्ण व्यवहार करने तथा लोभ और अहंकार पर नियंत्रण रखने की प्रेरणा दी गई है। इस प्रकार धर्म का संबंध मनुष्य के बाह्य आचरण और आंतरिक चेतना दोनों से है।

Published: 12 November 2026
DOI: https://doi.org/10.70558/IJMRS.2026.v2.i4.301259
Copyright © 2026 The Author(s). This work is licensed under a Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY 4.0).

धर्म के संदर्भ में ईश्वर की अवधारणा अत्यंत प्राचीन और प्रभावशाली रही है। विश्व की अनेक धार्मिक परंपराओं में ईश्वर को सृष्टिकर्ता, पालनकर्ता, नियामक, न्यायाधीश, करुणामय शक्ति अथवा परम सत्य के रूप में स्वीकार किया गया है। भारतीय दर्शन में ईश्वर की अवधारणा भी विविध रूपों में मिलती है। वेदांत में ब्रह्म को परम वास्तविकता माना गया है, योग दर्शन में ईश्वर को एक विशिष्ट पुरुष के रूप में स्वीकार किया गया है, जबकि कुछ भारतीय दार्शनिक परंपराएँ ईश्वर को सृष्टि के अनिवार्य कारण के रूप में स्वीकार नहीं करतीं। फिर भी इन परंपराओं में नैतिकता, आत्मसंयम, कर्म और मुक्ति के प्रश्नों का अत्यंत गंभीर विवेचन मिलता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि धर्म और नैतिकता का संबंध ईश्वरवाद तक सीमित नहीं है।

नैतिकता धर्म का एक प्रमुख पक्ष है। नैतिकता व्यक्ति को यह समझने में सहायता करती है कि उसे किस प्रकार का जीवन जीना चाहिए। सत्य और असत्य, उचित और अनुचित, न्याय और अन्याय तथा सदाचार और दुराचार के बीच विवेक करना नैतिक चेतना का आधार है। धार्मिक दृष्टि से नैतिकता को अक्सर ईश्वरीय आदेश, दैवी नियम अथवा धर्मसम्मत कर्तव्य के रूप में समझा जाता है। किंतु आधुनिक नैतिक दर्शन यह प्रश्न भी उठाता है कि क्या नैतिकता के लिए ईश्वर में विश्वास अनिवार्य है। अनेक चिंतकों ने मानव विवेक, स्वतंत्र इच्छा, सामाजिक संविदा, कर्तव्यबोध और मानवीय गरिमा को नैतिकता का आधार माना है। इसलिए धर्म और नैतिकता के संबंध का अध्ययन करते समय आस्था और विवेक, परंपरा और परिवर्तन तथा ईश्वरीय विश्वास और मानवीय उत्तरदायित्व के बीच संतुलन आवश्यक हो जाता है।

आस्था धर्म का वह पक्ष है जो व्यक्ति को केवल बौद्धिक ज्ञान से आगे बढ़ाकर अनुभव, विश्वास और समर्पण के स्तर तक ले जाता है। मनुष्य के जीवन में अनेक ऐसी परिस्थितियाँ आती हैं जहाँ पूर्ण निश्चितता संभव नहीं होती। संकट, दुःख, मृत्यु, हानि और भविष्य की अनिश्चितता के बीच आस्था व्यक्ति को मानसिक एवं आध्यात्मिक संबल प्रदान कर सकती है। किंतु आस्था का सकारात्मक स्वरूप तभी विकसित होता है जब वह विवेक, करुणा और सत्य के साथ जुड़ी हो। अंधविश्वास और आस्था में अंतर करना आवश्यक है। स्वस्थ आस्था व्यक्ति की चेतना का विस्तार करती है, जबकि अंधविश्वास उसके विवेक को सीमित कर सकता है।

धर्म की अवधारणा और उसका व्यापक स्वरूप

भारतीय परंपरा में 'धर्म' शब्द का अर्थ केवल किसी विशेष संप्रदाय या पूजा-पद्धति से नहीं है। धर्म का मूल अर्थ उस सिद्धांत या व्यवस्था से है जो जीवन और समाज को धारण करती है। "धारणात् धर्म इत्याहुः" की भावना के अनुसार धर्म वह है जो व्यक्ति और समाज को स्थिरता, व्यवस्था और कल्याण की दिशा प्रदान करे। धर्म का संबंध केवल मंदिर, मस्जिद, चर्च, गुरुद्वारा अथवा अन्य धार्मिक संस्थानों तक सीमित नहीं है; उसका संबंध जीवन के व्यवहारिक और नैतिक पक्ष से भी है। भारतीय चिंतन में सत्य, अहिंसा, दया, क्षमा, संयम, त्याग और परोपकार को धार्मिक जीवन के महत्त्वपूर्ण गुणों के रूप में स्वीकार किया गया है। यदि कोई व्यक्ति बाह्य रूप से अत्यधिक धार्मिक दिखाई देता है, लेकिन उसके व्यवहार में हिंसा, छल, अन्याय और घृणा है, तो उसके धर्म की नैतिक सार्थकता पर प्रश्न उठता है। इसलिए धर्म का वास्तविक मूल्य व्यक्ति के आचरण और उसके द्वारा समाज में उत्पन्न होने वाले कल्याण से भी निर्धारित होता है।

धर्म व्यक्ति को केवल अधिकारों की नहीं, कर्तव्यों की भी चेतना देता है। आधुनिक जीवन में अधिकारों की चर्चा व्यापक है, किंतु सामाजिक संतुलन के लिए कर्तव्यबोध भी उतना ही आवश्यक है। माता-पिता, परिवार, समाज, राष्ट्र और समस्त मानवता के प्रति उत्तरदायित्व की भावना धर्म के व्यापक नैतिक अर्थ से जुड़ती है। धर्म यदि व्यक्ति को आत्मकेंद्रित बनाने के बजाय व्यापक हित के लिए प्रेरित करता है, तभी वह अपने वास्तविक उद्देश्य को पूरा करता है।

धर्म में ईश्वर की अवधारणा

ईश्वर धर्म का एक प्रमुख आधार है, यद्यपि प्रत्येक धार्मिक और दार्शनिक परंपरा में ईश्वर की अवधारणा समान नहीं है। कहीं ईश्वर को व्यक्तिगत और सगुण सत्ता के रूप में माना गया है, तो कहीं वह निर्गुण, निराकार और सर्वव्यापी परम सत्य है। कुछ परंपराओं में ईश्वर प्रेम और करुणा का स्रोत है, जबकि कुछ में वह न्याय और नैतिक व्यवस्था का संरक्षक है।

वेदांत दर्शन में ब्रह्म को अंतिम और परम वास्तविकता माना गया है। उपनिषदों का प्रसिद्ध कथन है—

"सर्वं खल्विदं ब्रह्म।"

अर्थात् यह समस्त जगत ब्रह्म ही है। यह दृष्टिकोण ईश्वर या परम सत्य को किसी सीमित वस्तु के रूप में नहीं, बल्कि समस्त अस्तित्व के आधार के रूप में समझता है। उपनिषदों में आत्मा और परम सत्य के संबंध पर विशेष बल दिया गया है। "अहं ब्रह्मास्मि" और "तत्त्वमसि" जैसे महावाक्य मनुष्य के भीतर स्थित गहन आध्यात्मिक संभावना की ओर संकेत करते हैं।

भगवद्गीता में ईश्वर को जगत का आधार, समस्त प्राणियों का अंतर्यामी और कर्मों का साक्षी बताया गया है। गीता की धार्मिकता केवल ईश्वर की पूजा तक सीमित नहीं है; वह निष्काम कर्म, स्वधर्म, समत्व और लोकसंग्रह पर भी बल देती है। इस प्रकार ईश्वर की अवधारणा मनुष्य के नैतिक कर्तव्य से जुड़ जाती है। ईश्वर में विश्वास व्यक्ति के जीवन को एक व्यापक अर्थ प्रदान कर सकता है। जब व्यक्ति स्वयं को केवल निजी स्वार्थों तक सीमित न मानकर किसी व्यापक नैतिक और आध्यात्मिक व्यवस्था का अंग समझता है, तब उसके व्यवहार में उत्तरदायित्व की भावना उत्पन्न हो सकती है। यह विचार कि हमारे कर्मों का नैतिक महत्त्व है और जीवन केवल क्षणिक लाभ की प्राप्ति के लिए नहीं है, धार्मिक चेतना का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष है। फिर भी यह स्वीकार करना आवश्यक है कि ईश्वर की अवधारणा का उपयोग कभी-कभी संकीर्णता के लिए भी किया गया है। जब कोई व्यक्ति अपने ईश्वर को ही एकमात्र सत्य मानकर अन्य विश्वासों के प्रति घृणा विकसित करता है, तब धर्म का मानवीय उद्देश्य कमजोर पड़ जाता है। ईश्वर की सच्ची अवधारणा व्यक्ति को विनम्रता, करुणा और व्यापकता की ओर ले जानी चाहिए, न कि हिंसा और विभाजन की ओर।

ईश्वर और नैतिकता का संबंध

धार्मिक दृष्टिकोण में प्रायः नैतिकता को ईश्वर से संबंधित माना जाता है। यह विश्वास किया जाता है कि ईश्वर सत्य, न्याय और सदाचार का परम आधार है। यदि ईश्वर सर्वज्ञ और न्यायकारी है, तो मनुष्य के कर्मों का नैतिक मूल्य केवल सामाजिक स्वीकृति से निर्धारित नहीं होता, बल्कि उनका एक गहरा आध्यात्मिक अर्थ भी होता है। ईश्वर में विश्वास रखने वाला व्यक्ति यह अनुभव कर सकता है कि वह अपने कार्यों के लिए किसी उच्चतर नैतिक सत्ता के प्रति उत्तरदायी है। इससे उसके भीतर आत्मनियंत्रण और नैतिक अनुशासन विकसित हो सकता है। धर्मग्रंथों में पाप और पुण्य, शुभ और अशुभ तथा धर्म और अधर्म की अवधारणाएँ इसी नैतिक चेतना को विकसित करने का प्रयास करती हैं।

भारतीय कर्म सिद्धांत ईश्वर और नैतिकता के संबंध को एक विशिष्ट रूप प्रदान करता है। कर्म का सिद्धांत यह बताता है कि प्रत्येक कर्म के परिणाम होते हैं। व्यक्ति के कर्म केवल बाह्य संसार को प्रभावित नहीं करते, बल्कि उसके व्यक्तित्व और भविष्य के अनुभवों को भी प्रभावित करते हैं। इस दृष्टि से नैतिक जीवन किसी बाहरी पुरस्कार या दंड के भय पर आधारित नहीं होना चाहिए; व्यक्ति को यह समझना चाहिए कि उसके कर्म स्वयं उसके जीवन और समाज

के निर्माण में योगदान देते हैं। हालाँकि नैतिकता को केवल ईश्वर-भय पर आधारित करना पर्याप्त नहीं है। यदि व्यक्ति केवल दंड के भय से नैतिक कार्य करता है, तो उसका नैतिक चरित्र अभी परिपक्व नहीं कहा जा सकता। उच्चतर नैतिकता में व्यक्ति सत्य और न्याय को इसलिए अपनाता है क्योंकि वह उन्हें स्वयं मूल्यवान मानता है। उदाहरण के लिए, किसी व्यक्ति की सहायता केवल इसलिए करना कि ईश्वर प्रसन्न होंगे, एक धार्मिक प्रेरणा हो सकती है; लेकिन करुणा का उच्चतर रूप तब दिखाई देता है जब व्यक्ति दूसरे के दुःख को अपना मानकर सहायता करता है।

अतः धर्म में ईश्वर नैतिक प्रेरणा का एक महत्त्वपूर्ण स्रोत हो सकता है, किंतु नैतिकता का विकास विवेक, करुणा, सहानुभूति और आत्मचेतना से भी जुड़ा होना चाहिए।

नैतिकता : धर्म का आंतरिक आधार

नैतिकता का संबंध मनुष्य के आचरण से है। यह प्रश्न कि "मुझे क्या करना चाहिए?" नैतिक दर्शन का केंद्रीय प्रश्न है। धर्म इस प्रश्न का उत्तर अनेक रूपों में देता है। कहीं नैतिकता को ईश्वरीय आदेश माना गया है, कहीं कर्म और उसके परिणाम के सिद्धांत से जोड़ा गया है और कहीं आत्मा की शुद्धि तथा मुक्ति का साधन माना गया है। भारतीय चिंतन में नैतिकता का एक अत्यंत समृद्ध स्वरूप मिलता है। सत्य, अहिंसा, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह जैसे सिद्धांत व्यक्ति के जीवन को अनुशासित करने का प्रयास करते हैं। योग दर्शन में यम और नियम नैतिक तथा आध्यात्मिक विकास के आधार हैं। सत्य का अर्थ केवल तथ्यात्मक सत्य बोलना नहीं, बल्कि जीवन में ईमानदारी और प्रामाणिकता को स्वीकार करना भी है। अहिंसा केवल शारीरिक हिंसा से बचना नहीं, बल्कि विचार, वाणी और कर्म से दूसरों को अनावश्यक पीड़ा न पहुँचाने की चेतना भी है।

महात्मा गांधी ने सत्य और अहिंसा को जीवन के सर्वोच्च नैतिक सिद्धांतों के रूप में प्रतिष्ठित किया। उनके लिए धर्म का वास्तविक अर्थ मानवता की सेवा और नैतिक जीवन था। गांधीजी की दृष्टि में ईश्वर और सत्य परस्पर गहराई से जुड़े थे। उनका प्रसिद्ध विचार "सत्य ही ईश्वर है" ईश्वर की नैतिक व्याख्या का एक विशिष्ट उदाहरण है। यहाँ ईश्वर केवल पूजा का विषय नहीं, बल्कि जीवन में सत्य की खोज और उसके प्रति निष्ठा का नाम बन जाता है। नैतिकता के बिना धर्म बाह्य आडंबर बन सकता है। यदि धार्मिक अनुष्ठान तो किए जाएँ, लेकिन व्यक्ति दूसरों के साथ अन्याय करे, तो धार्मिकता का नैतिक आधार समाप्त हो जाता है। इसी प्रकार नैतिकता को केवल नियमों के पालन तक सीमित करना भी उचित नहीं है। नैतिक जीवन में संवेदनशीलता और परिस्थितियों की समझ भी आवश्यक है। कभी-कभी दो नैतिक मूल्यों के बीच संघर्ष उत्पन्न हो सकता है। ऐसी स्थिति में विवेक और मानवीय करुणा की भूमिका महत्त्वपूर्ण हो जाती है।

धर्म में आस्था की भूमिका

आस्था मनुष्य के आंतरिक जीवन की एक गहन शक्ति है। यह केवल किसी तथ्य को बिना प्रमाण स्वीकार कर लेना नहीं है। धार्मिक अर्थ में आस्था विश्वास, समर्पण, अनुभव और जीवन के प्रति एक गहरी प्रतिबद्धता का रूप ले सकती है। व्यक्ति ईश्वर, आत्मा, कर्म, मुक्ति या किसी उच्चतर नैतिक आदर्श में आस्था रख सकता है। जीवन अनिश्चितताओं से भरा हुआ है। मनुष्य भविष्य को पूरी तरह नियंत्रित नहीं कर सकता। बीमारी, मृत्यु, हानि, असफलता और अनेक प्रकार के संकट उसके सामने उपस्थित होते हैं। ऐसी परिस्थितियों में आस्था व्यक्ति को मानसिक स्थिरता और आशा प्रदान कर सकती है। वह व्यक्ति को निराशा से संघर्ष करने और कठिन परिस्थितियों में अर्थ खोजने की शक्ति देती है।

आस्था का संबंध केवल धार्मिक विश्वास से नहीं, बल्कि जीवन-मूल्यों के प्रति प्रतिबद्धता से भी है। एक व्यक्ति को सत्य, मानवता, न्याय और करुणा में भी गहरी आस्था हो सकती है। इस अर्थ में आस्था मनुष्य को उसके आदर्शों के साथ जोड़ती है। यदि किसी व्यक्ति को यह विश्वास है कि न्याय के लिए संघर्ष करना आवश्यक है, तो कठिन परिस्थितियों में भी वह अपने नैतिक सिद्धांतों पर दृढ़ रह सकता है। धार्मिक आस्था का सकारात्मक स्वरूप व्यक्ति के भीतर विनम्रता उत्पन्न करता है। जब मनुष्य यह स्वीकार करता है कि उसकी बुद्धि सीमित है और अस्तित्व में अनेक रहस्य हैं, तब उसके भीतर अहंकार कम हो सकता है। लेकिन आस्था तभी सार्थक है जब वह प्रश्न करने की क्षमता को समाप्त न करे। ऐसी आस्था जो विवेक और मानवीय संवेदना को नष्ट कर दे, स्वस्थ धार्मिक चेतना नहीं कही जा सकती।

आस्था और अंधविश्वास में अंतर

धर्म के अध्ययन में आस्था और अंधविश्वास के बीच अंतर करना अत्यंत आवश्यक है। आस्था व्यक्ति को आंतरिक शक्ति देती है, जबकि अंधविश्वास व्यक्ति को बिना विचार किए किसी विश्वास के अधीन कर सकता है। आस्था में श्रद्धा के साथ विवेक भी हो सकता है; अंधविश्वास में प्रायः भय, असुरक्षा और तर्कहीनता का प्रभाव अधिक होता है। उदाहरण के लिए, किसी व्यक्ति का प्रार्थना या ध्यान के माध्यम से मानसिक शांति प्राप्त करना आस्था का रूप हो सकता है। लेकिन यदि वह यह मान ले कि केवल किसी विशेष कर्मकाण्ड को करने से बिना प्रयास के जीवन की सभी समस्याएँ समाप्त हो जाएँगी, तो यह अंधविश्वास की दिशा हो सकती है। इसी प्रकार धार्मिक प्रतीकों और परंपराओं के प्रति सम्मान आस्था है, किंतु उन्हें मानव विवेक और नैतिकता से ऊपर रखकर दूसरों के प्रति घृणा करना धर्म के मूल उद्देश्य के विपरीत है।

उपनिषदों की परंपरा प्रश्न और जिज्ञासा को महत्त्व देती है। गुरु और शिष्य के संवाद, आत्मा और ब्रह्म के संबंध पर चिंतन तथा सत्य की खोज यह दर्शाती है कि भारतीय धार्मिक परंपरा में विवेकपूर्ण अन्वेषण का भी महत्त्व रहा है। इसलिए सच्ची आस्था प्रश्नों से डरती नहीं; वह सत्य की खोज में प्रश्नों को स्वीकार करती है। आधुनिक समाज में वैज्ञानिक चेतना और धार्मिक आस्था के बीच संतुलन आवश्यक है। विज्ञान अनुभव और प्रमाण के आधार पर प्राकृतिक जगत का अध्ययन करता है, जबकि धर्म और दर्शन जीवन के अर्थ, मूल्य और अंतिम उद्देश्य से जुड़े प्रश्नों पर विचार करते हैं। दोनों के क्षेत्रों और विधियों को समझकर संवाद स्थापित किया जा सकता है। समस्या तब उत्पन्न होती है जब धार्मिक आस्था वैज्ञानिक तथ्यों को अस्वीकार करने लगे या वैज्ञानिक दृष्टि मानव जीवन के नैतिक और आध्यात्मिक प्रश्नों को निरर्थक मानने लगे।

भारतीय दर्शन में ईश्वर, नैतिकता और आस्था

भारतीय दर्शन की विशेषता उसकी बहुलता है। यहाँ एक ही प्रकार की धार्मिक या दार्शनिक मान्यता नहीं मिलती। वेदांत में ब्रह्म और आत्मा के संबंध को केंद्रीय महत्त्व प्राप्त है। योग दर्शन ईश्वर, आत्मसंयम और चित्तवृत्तियों के नियंत्रण को आध्यात्मिक विकास से जोड़ता है। न्याय दर्शन ईश्वर और तर्क के प्रश्नों पर विचार करता है। मीमांसा कर्म और वैदिक कर्तव्य को विशेष महत्त्व देती है। बौद्ध और जैन परंपराएँ सृष्टिकर्ता ईश्वर की धारणा को केंद्रीय स्थान नहीं देतीं, फिर भी नैतिकता और आध्यात्मिक अनुशासन का अत्यंत उच्च आदर्श प्रस्तुत करती हैं। यह विविधता एक महत्त्वपूर्ण तथ्य को सामने लाती है कि नैतिक जीवन के लिए केवल एक ही दार्शनिक आधार आवश्यक नहीं है। ईश्वरवादी व्यक्ति नैतिक हो सकता है, लेकिन नास्तिक या अनीश्वरवादी व्यक्ति भी सत्यनिष्ठ, करुणामय और न्यायप्रिय हो सकता है। इसी प्रकार केवल ईश्वर में विश्वास करना किसी व्यक्ति को स्वतः नैतिक नहीं बना देता। वास्तविक प्रश्न व्यक्ति के आचरण और उसके द्वारा अपनाए गए मूल्यों का है। जैन धर्म में अहिंसा को अत्यंत महत्त्व प्राप्त है। बौद्ध दर्शन करुणा, मैत्री और दुःख से मुक्ति पर बल देता है। इन परंपराओं का नैतिक संदेश

दर्शाता है कि मानव कल्याण और नैतिक अनुशासन धार्मिक जीवन के केंद्रीय उद्देश्य हो सकते हैं, चाहे ईश्वर की दार्शनिक अवधारणा का स्वरूप भिन्न क्यों न हो। भारतीय संस्कृति की "वसुधैव कुटुम्बकम्" की भावना भी धर्म और नैतिकता के व्यापक संबंध को प्रकट करती है। यह विचार मनुष्य को सीमित स्वार्थ से ऊपर उठाकर समस्त विश्व के प्रति उत्तरदायी बनने की प्रेरणा देता है। यदि धर्म वास्तव में मानवता को जोड़ता है, तो उसका उद्देश्य केवल किसी विशेष समुदाय का हित नहीं, बल्कि व्यापक कल्याण होना चाहिए।

समकालीन समाज में धर्म, नैतिकता और आस्था की प्रासंगिकता

वर्तमान समय में विज्ञान और तकनीक ने मानव जीवन को अत्यंत तीव्र गति से बदल दिया है। संचार के साधन, कृत्रिम बुद्धिमत्ता, चिकित्सा, परिवहन और डिजिटल तकनीक ने नई संभावनाएँ उत्पन्न की हैं। लेकिन इन प्रगतियों के साथ अनेक नैतिक प्रश्न भी उत्पन्न हुए हैं। तकनीक का उपयोग किस उद्देश्य से किया जाए? आर्थिक विकास और पर्यावरण संरक्षण के बीच संतुलन कैसे स्थापित हो? व्यक्तिगत स्वतंत्रता और सामाजिक उत्तरदायित्व में सामंजस्य कैसे बने? इन प्रश्नों का उत्तर केवल तकनीकी ज्ञान से नहीं दिया जा सकता; इनके लिए नैतिक दृष्टि की आवश्यकता है। आज धर्म की सबसे बड़ी आवश्यकता उसके मानवीय और नैतिक स्वरूप को पुनर्स्थापित करने में है। धार्मिक पहचान के नाम पर उत्पन्न घृणा, हिंसा और कट्टरता धर्म के मूल उद्देश्य को चुनौती देती हैं। यदि ईश्वर में विश्वास व्यक्ति को अधिक करुणामय नहीं बनाता, यदि आस्था उसे अधिक सत्यनिष्ठ नहीं बनाती और यदि धर्म उसे अन्याय के विरुद्ध खड़ा होने की प्रेरणा नहीं देता, तो धार्मिकता केवल बाह्य पहचान बनकर रह सकती है।

समकालीन समाज में भ्रष्टाचार, हिंसा, पर्यावरणीय संकट, उपभोक्तावाद और सामाजिक असमानता जैसी समस्याएँ केवल कानूनी उपायों से समाप्त नहीं की जा सकतीं। इनके समाधान के लिए व्यक्ति के भीतर नैतिक जिम्मेदारी विकसित करना आवश्यक है। धर्म इस दिशा में योगदान कर सकता है, बशर्ते वह भय, विभाजन और अंधविश्वास के बजाय विवेक, करुणा और लोकमंगल पर आधारित हो। आस्था भी आधुनिक मनुष्य के लिए प्रासंगिक है, क्योंकि केवल भौतिक सफलता जीवन की सभी अस्तित्वगत समस्याओं का समाधान नहीं करती। व्यक्ति के पास धन और सुविधा हो सकती है, लेकिन फिर भी वह जीवन के उद्देश्य और आंतरिक संतुलन के प्रश्नों से जूझ सकता है। आध्यात्मिक आस्था, ध्यान, प्रार्थना और आत्मचिंतन व्यक्ति को अपने भीतर लौटने और जीवन के गहरे अर्थ पर विचार करने का अवसर दे सकते हैं।

धर्म और मानवता का संबंध

धर्म का सर्वोच्च मूल्य मानवता के विकास में निहित है। यदि धर्म मनुष्य को मनुष्य से दूर कर दे, तो उसका उद्देश्य अधूरा रह जाता है। सभी धार्मिक परंपराओं में किसी न किसी रूप में करुणा, प्रेम, सेवा, क्षमा और सत्य का संदेश मिलता है। इसलिए धर्म का मूल्यांकन केवल उसके सिद्धांतों के आधार पर नहीं, बल्कि उसके अनुयायियों के व्यवहार और समाज पर उसके प्रभाव के आधार पर भी किया जाना चाहिए। ईश्वर में आस्था रखने का अर्थ यह नहीं होना चाहिए कि व्यक्ति मानव-सेवा की उपेक्षा करे। अनेक संतों और समाज सुधारकों ने ईश्वर की सेवा को मानवता की सेवा से जोड़ा। भूखे को भोजन देना, पीड़ित की सहायता करना, अन्याय के विरुद्ध आवाज उठाना और कमजोर वर्गों के सम्मान की रक्षा करना धार्मिक नैतिकता के व्यावहारिक रूप हैं। धर्म व्यक्ति के भीतर आत्मनिरीक्षण की क्षमता भी विकसित कर सकता है। धार्मिक जीवन का अर्थ केवल दूसरों के दोष देखना नहीं, बल्कि अपने भीतर स्थित क्रोध, लोभ, ईर्ष्या और अहंकार को पहचानना भी है। वास्तविक आध्यात्मिकता व्यक्ति को स्वयं के प्रति ईमानदार बनाती है। वह बाहरी संसार को बदलने से पहले अपने व्यवहार और दृष्टिकोण को सुधारने का प्रयास करता है।

निष्कर्ष

धर्म में ईश्वर, नैतिकता और आस्था का संबंध अत्यंत गहरा और बहुआयामी है। ईश्वर की अवधारणा मनुष्य को जीवन और जगत के अंतिम आधार पर विचार करने की प्रेरणा देती है। अनेक धार्मिक परंपराओं में ईश्वर को सत्य, न्याय, करुणा और नैतिक व्यवस्था के आधार के रूप में देखा गया है। किंतु ईश्वर-विश्वास का वास्तविक मूल्य तभी है जब वह व्यक्ति के जीवन में विनम्रता, करुणा, सत्यनिष्ठा और उत्तरदायित्व का विकास करे। नैतिकता धर्म का आंतरिक और व्यावहारिक पक्ष है। धर्म की सार्थकता व्यक्ति के आचरण से प्रमाणित होती है। सत्य, अहिंसा, न्याय, दया, सहिष्णुता और सेवा जैसे मूल्य धार्मिक जीवन को मानवीय आधार प्रदान करते हैं। केवल कर्मकाण्ड या धार्मिक पहचान नैतिक जीवन का विकल्प नहीं हो सकते। एक व्यक्ति का वास्तविक धर्म उसके व्यवहार में दिखाई देता है।

आस्था व्यक्ति के जीवन में आशा, साहस और आंतरिक शक्ति का स्रोत हो सकती है। कठिन परिस्थितियों में यह मनुष्य को मानसिक संतुलन प्रदान करती है और उसे जीवन के गहरे अर्थ से जोड़ती है। किंतु आस्था का स्वस्थ स्वरूप विवेक और प्रश्न करने की क्षमता के साथ होना चाहिए। आस्था जब अंधविश्वास, भय और कट्टरता में परिवर्तित हो जाती है, तब वह व्यक्ति और समाज दोनों के लिए हानिकारक हो सकती है। भारतीय चिंतन परंपरा की विविधता यह स्पष्ट करती है कि ईश्वर, धर्म और नैतिकता के संबंध को किसी एक संकीर्ण दृष्टिकोण में सीमित नहीं किया जा सकता। ईश्वरवादी और अनीश्वरवादी दोनों प्रकार की दार्शनिक परंपराओं ने नैतिक जीवन और आत्मिक उन्नति के लिए महत्त्वपूर्ण सिद्धांत प्रस्तुत किए हैं। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि ईश्वर में विश्वास नैतिक प्रेरणा का महत्त्वपूर्ण स्रोत हो सकता है, लेकिन नैतिकता के लिए करुणा, विवेक, कर्तव्यबोध और मानवीय गरिमा भी आवश्यक आधार हैं। आज के समय में धर्म की प्रासंगिकता तभी बढ़ेगी जब वह मानवता को जोड़ने वाली शक्ति बने। धार्मिक आस्था व्यक्ति को संकीर्ण पहचान से ऊपर उठाकर व्यापक मानवीय चेतना की ओर ले जाए। ईश्वर की खोज केवल बाह्य पूजा तक सीमित न रहे, बल्कि सत्य और करुणा की खोज बने। नैतिकता केवल उपदेश न होकर व्यवहार का हिस्सा बने और आस्था विवेक के साथ मिलकर व्यक्ति को आत्मिक रूप से समृद्ध करे।

अंततः धर्म का सर्वोच्च उद्देश्य भय उत्पन्न करना नहीं, बल्कि मनुष्य को उसके श्रेष्ठतम स्वरूप की ओर प्रेरित करना है। ईश्वर की अवधारणा व्यक्ति को विनम्र बनाए, नैतिकता उसे न्यायपूर्ण बनाए और आस्था उसे संकटों में भी सत्य तथा मानवता के मार्ग पर दृढ़ रखे—यही धर्म में ईश्वर, नैतिकता और आस्था के समन्वित स्वरूप का वास्तविक संदेश है। एक स्वस्थ और मानवीय समाज के निर्माण के लिए इन तीनों का संबंध बाह्य प्रदर्शन के बजाय आंतरिक परिवर्तन और लोककल्याण से स्थापित होना चाहिए। जब धर्म मनुष्य के भीतर करुणा, विवेक और उत्तरदायित्व का प्रकाश जगाता है, तभी वह अपने वास्तविक और व्यापक अर्थ में मानव जीवन का मार्गदर्शक बनता है।

संदर्भ सूची

1. उपनिषद् साहित्य, विभिन्न प्रामाणिक संस्करण।
2. भगवद्गीता, गीता प्रेस तथा अन्य आलोचनात्मक संस्करण।
3. डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन, *भारतीय दर्शन*, विभिन्न संस्करण।
4. स्वामी विवेकानन्द, *कर्मयोग*, *ज्ञानयोग* एवं *राजयोग*।
5. महात्मा गांधी, *सत्य के प्रयोग*।
6. डॉ. एस. राधाकृष्णन, *Indian Philosophy*।

7. दासगुप्त, सुरेन्द्रनाथ, *A History of Indian Philosophy*।

8. चटर्जी एवं दत्ता, *भारतीय दर्शन का परिचय*।

9. दयानन्द भार्गव, *भारतीय दर्शन की रूपरेखा*।

10. विभिन्न भारतीय दार्शनिक एवं नैतिक चिंतन संबंधी शोधग्रंथ और अकादमिक स्रोत।